Folk Tradition

Culture, Heritage and History

Edited by
Dr. Ram Pande

SHODHAK
JAIPUR-302017 (INDIA)

Scanned with CamScanner

Folk Tradition

Culture, Heritage and History

Edited by
Dr. Ram Pande

SHODHAK
Jaipur-302017 (INDIA)

Scanned with CamScanner

Folk Tradition
Proceedings of the Seminar held on 'Folk Tradition' Culture, Heritage and History on 9-10 August, 2018 under the auspices of Shodhak.

ISBN 978–81–922830–2–9

May be had from :
SHODHAK
B-424, Malviya Nagar, Jaipur-302017
E-mail : shodhak_journal@yahoo.co.in
Tel. : 0141-2524453 • Mobile : 9828467885

March 2019

The views expressed and facts stated by the authors are their own. Editor and Organisers of Seminar are not responsible in any way for that.

Subscription in India Rs. 1000/-
Abroad $ 40

Type Setting & Printed by :
Rainbow Offset Printers
B-3, Sudershanpura Ind. Area,
22-Godam, Jaipur • Ph. : 0141-220284

Scanned with CamScanner

CONTENTS

1.	Preface	v-vi
2.	Celebrating A Ritual Folk Art : The Theyyam in Kerala - Preeta Nilesh	1-7
3.	Contextualizing the Cultural Dynamism of the Siddis of Gujarat : Analyzing Patterns of Continuity and Change - Dr. Chandni Sengupta	8-14
4.	History of Traditional Games in Tamilnadu Pallanguzhi and Dhayakattam - Dr. T. Kausalya Kumari	15-22
5.	Jain Yati and Bardic Historians of Medieval Rajasthan : A Source of Rajasthani Culture, Tradition and Historical Herittage - Neha Singh	23-31
6.	इतिहास के दर्पण में शेखावाटी की लोक संस्कृति - डॉ. राजेश आर्य	32-40
7.	Baul - Folk Tradition and Culture - Heritage and its History - Dr. Shiva Vyas	41-47
8.	A Study on Death Rituals and Memorial Pillars of Tribes of Bastar - Dr. Anil Kumar Pandey	48-67
9.	Tradition of Lok Gathas in Jammu Region : A Case Study of Dogri Lok Gathas - Dr. Mrinalini Atrey	68-82
10.	राजस्थान के लुप्त होते लोक-वाद्य - डॉ. सुनीता श्रीमाली	83-90
11.	Theories of Traditions of the Santals and their Settlements : A Study of the Santal Traditions and their Settlements in Historical Perspective - Prof. Dr. Dinesh Narayan Verma, Amisha Raj	91-100

Scanned with CamScanner

12. राजस्थान के लोकमानस के लोकप्रिय देवता 'भैरूं जी' संबंधी लोकगीतों में प्रच्छन्न सामाजिक मानसिकता - डॉ. शिल्पी गुप्ता 101-107

13. 'शौका' जनजाति की सामाजिक परम्पराओं का अध्ययन (उच्च हिमालयी राज्य 'उत्तराखण्ड' के विशेष संदर्भ में) - डॉ. दया पंत 108-117

14. मेवाड़ का सांस्कृतिक परिवेश और जानश्रुतिक परम्परा : गणगौर पर्व के विशेष संदर्भ में - डॉ. प्रतिभा 118-130

15. गर कीखेर देवियाँ - एक अवलोकन - डॉ. रंजना जैन 131-143

16. Culture and Identity : A Case Study of the Sidd Jasanathi of Bikaner - Dr. Etee Bahadur 144-150

17. Origin and Traditions of Paharias : A Study of Autochthons of Santal Parganas in Jharkhand - Prof. Dr. Dinesh Narayan Verma, Sobha 151-154

Scanned with CamScanner

मेवाड़ का सांस्कृतिक परिवेश और जानश्रुतिक परम्परा : गणगौर पर्व के विशेष संदर्भ में

- डॉ. प्रतिभा

भारतीय संस्कृति में चैत्रमास बसन्त ऋतु के स्वागत और प्रकृति के श्रृंगार को समर्पित है क्योंकि यही वह समय है जब सर्दी की शीतल कठोरता से मुक्त पेड़-पौधे नव कोंपल के अंकुरण और मनुष्य नव-चेतना तथा नव-सृजन से भर उठते हैं।

चैत्र शुक्ल पक्ष के प्रथम नौ दिन सम्पूर्ण भारत में देवी को समर्पित हैं। राजस्थान में यह देवी पर्व विशिष्ट स्थानीय कलेवर में, प्रकृति, भक्ति और संस्कृति के अनूठे सम्मिश्रण में रचा बसा है, जिसे 'गणगौर' की ख्याति प्राप्त है। होलिका-दहन के दूसरे दिन अर्थात् चैत्र कृष्ण-प्रतिपदा से प्रारम्भ होकर चैत्र शुक्ल तृतीया तक पूरे 18 दिन तक यह उत्सवी माहौल चलता रहता है।

गणगौर पर्व प्रमुख रूप से आद्य ईश 'शिव' तथा आद्या शक्ति 'पार्वती' की आराधना को समर्पित है। राजपूताना में 'गण' तथा 'ईसर' सम्बोधन शिव हेतु तथा गौर या 'गवर' पार्वती हेतु प्रचलित है।[1]

राजस्थान में गणगौर उत्सव वस्तुत: कब से प्रारम्भ हुआ, यह ज्ञात नहीं, किंतु राजपूताना के सम्पूर्ण ज्ञात और लिखित इतिहास में इसका उल्लेख किसी न किसी रूप में प्राप्त हो ही जाता है, जिससे इसकी प्राचीनता का अनुमान स्वत: लगाया जा सकता है। संभवत: सभी प्राचीन पर्वों की भांति ऋतु विशेष के स्वागत के लिए प्रारम्भ इस पर्व ने समय के साथ-साथ शिव गौरी की सामूहिक उपासना का भव्य रूप धारण कर लिया। स्पष्टत: भारत के भृतु उत्सवों के रूप में ही प्रारम्भ यह त्यौहार अनेक आख्यानों किंवदन्तियों को अपने में समेटे हुए है।[2]

जनश्रुति के अनुसार चैत्र शुक्ला तृतीया को शिव-पार्वती का विवाह अथवा गौना हुआ था। इस प्रकार शिव प्राप्ति के लिए पार्वती के कठोर तप तथा उसके पश्चात् शिव को पति रूप में प्राप्त करने की उनकी सफलता के समारोह के रूप में इस पर्व को

Scanned with CamScanner

देखा जाता है। एक कथा के आधार पर शिव से विवाह के पश्चात् पार्वती के अपने पिता के घर वापिस लौटने के उपलक्ष्य में सखियों द्वारा उनका स्वागत और मनोरंजन हुआ था, तब से गणगौर का त्यौहार मनाया जाता है।

एक अन्य कथा के अनुसार दक्ष प्रजापति के यज्ञ में सती द्वारा अपनी आहुति देने और तत्पश्चात् शिव द्वारा सती के मृत शरीर को लेकर 16 दिनों तक यहां वहां भटकने की स्मृति स्वरूप यह पर्व 16 दिनों तक चलता रहता है और तत्पश्चात् दो दिन को गणगौर पूजन होता है।

एक अन्य आख्यान इस पर्व को भविष्योत्तर पुराण तक ले जाता है। वहां वर्णित है कि अपने विवाह के तुरन्त बाद भगवती गौरी ने अपने पति शिव से एक ऐसे सुसज्जित झूले के निर्माण की कामना की, जिसमें वह पहले वंसत में चैत्र माह में उनके साथ झूलने का सुख ले सकें -

आन्दोलनं मम कृते कारयेथा स्वलंकृतम्।

त्वया सह रमेयाहं यथा चैत्रे विशेषत।।:[3]

सातवीं शताब्दी में संपादित देवीपुराण में चैत्र की तृतीया तिथि को गौरी के साथ ईश्वर की पूजा का स्पष्ट निर्देश है। उनको झुलाने (ढ़ोलोत्सव आयोजन) का निर्देश देते है। पुराणकार ने कहा है कि कुंकुम, अगरु, कर्पूर, मणि, वस्त्र, सुगन्ध, माला, धूप-दीपों से विशेषकर दमनक जो कि तुलसी पत्र की तरह सुगन्ध देता है, से पूजा करें और शिव-उमा को उनकी प्रसन्नता के लिए झुलाएं।[4]

वस्तुत: भारतीय पौराणिक परम्परा शिव और गौरी को आदर्श दम्पत्ति के रूप में देखती है। गौरी ने अपने दो-तीन जन्मों में शिव को ही अपना पति रखा। पहले वह शक्ति नाम से थी। गौरी की एकनिष्ठा, उसका पतिव्रत धर्म देखकर ही शिव ने उसका पति होना स्वीकार किया था। उसने शिव को पतिरूप में पाने के लिए तपस्या की थी। उसको तपस्या से विचलित करने के लिए तपस्या की थी। उसको तपस्या से विचलित करने के लिए उसकी परीक्षा ली गयी, किन्तु वह उसमें सफल रही।''[5]

भारतीय लोकगीत भी शिव और गौरी के सुखी घरले जीवन को चित्रित करते हैं। वे एक दूसरे को लौकिक स्त्री पुरुष की तरह परस्पर सहयोग देते हैं। पगड़ी बांधने के कार्य में पारस्परिक सहयोग एक लोकगीत में सुन्दर ढंग से अभिव्यक्त है।

Scanned with CamScanner

ईसर जी तो पेचो बांधी
गौरां बाई पेच संवारे ओ राज
म्हे ईसर थारी साली छां

स्पष्टत: यह देवी के सबसे मनोरम और सुकुमार रूप भगवती पार्वती और कठोर तपस्या के पश्चात् पति के रूप में प्राप्त भगवान शिव के प्रेम का प्रतीक पर्व है, जिसको प्रत्येक व्यक्ति के जीवन से जोड़ा जा सकता है और प्रेम से आपूरित बसन्त ऋतु में इसका मनाया जाना अत्यन्त स्वाभाविक है। गणगौर के गीतों में बसन्त ऋतु की मादकता स्पष्ट परिलक्षित होती है -

म्हारा बैया नैं बाजूबंद ल्यावो रंग रसिया
गैरोजी फूल गुलाब को
गैरोजी बाई जी थारो वीरो रंगरसिया
म्हारी आंखड़ली फरुकै घर आवो रंग रसिया''[6]

''मदमाती बसन्त ऋतु आई। गणगौर का सदा सुरंगा त्यौहार आ गया। वन-उपवन में कोंपले फूट रही हैं। रंग-बिरंगे फुल खिल रहे हैं। समस्त जगत में आनन्द छा रहा है। हृदय में उमंग भरी है और शरीर में भरा है खिले हुए गहरे गुलाब के फूल सा सौन्दर्य और यौवन। हे प्यारे रसिक! तुमने बहुत कमा लिया अब घर आओ! हे बालम दिल्ली के द्वार पर नौबत बज रही है-ऋतुराज की, अब घर आओ।[7]

सम्पूर्ण राजपूताना में गणगौर का पर्व धूमधाम से मनाया जाता रहा है। आमजन के साथ-साथ राजपरिवारों का भी यह लोकप्रिय पर्व रहा है। बूंदी के अतिरिक्त यह उत्सव सम्पूर्ण राजपूताना की प्रत्येक रियासत में राजकीय स्तर पर मनाया जाता था। गणगौर के पर्व के लिए राजकोठार से अलग से रूपए निर्धारित किए जाते थे।[8]

वर्तमान में भी यह पर्व कुछ स्थानीय भिन्नताओं और विशेषताओं के साथ पूरे राजस्थान में मनाया जाता है। मेवाड़ क्षेत्र में तो गणगौर का विशेष महत्व रहा है। अविवाहित बालिकाएं अपने लिए शिव के समान सर्वविध काम्य वर की प्राप्ति तथा विवाहित स्त्रियां अपने सुहाग की दीर्घ आयु की मंगल कामना से गणगौर पूजन करती है। नव-विवाहिता अपने पहले त्यौहार को 18 दिन मनाती है। परम्परानुसार नव-विवाहिता, छह, आठ या दस कुंआरी कन्याओं को बबूल की डण्डी का टुकड़ा दातून के रूप में भेजती है। उनके स्वीकार होने का तात्पर्य यह होता है कि गौरी-पूजन के

Scanned with CamScanner

समय वे कन्यायें उसके संग होती हैं। उजेना होने तक यह क्रम जारी रहता है। कुछ कन्यायें एक वक्त भोजन करके व्रत भी रखती हैं।[9]

होलिका-दहन के दूसरे दिन अर्थात् चैत्र कृष्ण प्रतिपदा (धुलहण्डी) के दिन होलिका दहन वाले स्थान से होलिका की भस्मी लाकर उसमें जल से 16 पिण्डियां बनाकर गणगौर के प्रतीक के रूप में पूजा प्रारम्भ करती हैं।

प्रतिदिन प्रात:काल कन्यायें सिर पर कलश रखकर समीप के कुएँ, बावड़ी या तालाबों पर जाकर गौरी की पूजा करती हैं और गीत गाती हुई लौटती हैं। लौटते हुए अपने पात्र में स्वच्छ जल, हरी दूब तथा पुष्प लाती हैं और पूजा करती हैं विवाहित स्त्रियों को दूब, पुष्प मालिन लाकर देती है।

सात दिन के इस क्रम के बाद आठवें दिन अर्थात् शीतला अष्टमी के दिन कन्यायें तालाब के किनारे की चिकनी मिट्टी अथवा कुम्हार के यहां से मिट्टी लाकर उससे ईसर, गौर, कान्हीराम, रोवण तथा मालिन की प्रतिमाएं बनाकर सजा संवारकर स्थापित करती हैं। ईसर ब्रह्मा जी के पुत्र, गौरी ईसर की पत्नी, कान्हीराम ईसर का छोटा भाई, रोवण छोटी बहिन तथा मालिन सेविका के रूप में देखी जाती है।[10]

कुम्हार के यहां से मिट्टी की कुंड़ियाँ लाकर उनमें (होली की बची राख में) गेहूं अथवा जौ बोती है और उसे रोज सींचती हैं। सींचते हुए गाया जाने वाला गीत अद्‌भुत है -

गणगौर पूजूं गणपति ये
ईसर पूंजू पार्वती ये

उगे अनाज अथवा अंकुरों को जवारा कहते हैं, जिन्हें नई उपज के प्रतीक के रूप में देखा जा सकता हैं -

म्हारा हरिया ए जवारा सिर सूं
ऊँचा होय राहया जी

इस प्रकार गणगौर का नित्य-पूजन तथा भोग का क्रम जारी रहता है।

चैत्र शुक्ला द्वितीया के दिन गणगौर का 'दातुन हेला' पर्व मनाया जाता है। इस दिन बबूल, बथुआ या आम की टहनी का दातून बनाकर गणगौर को दातुन कराया जाता है। स्त्रियां श्रृंगार कर बाग-बगीचों में जाती हैं। नव-विवाहिता के ससुराल से सिंजारा आता है, जिसमें उसके लिए वस्त्र, श्रृंगार-सामग्री, फल-फूल, मेवा-मिठाई

Scanned with CamScanner

होती है। इसमें विशेष रूप से घेवर तथा गणगौर के अवसर पर बनाई जाने वाली मीठी एवं नमकीन पपड़ियां मुख्य होती हैं।[11] स्त्रियां अपने पति के घर रहने की आशा करती है –

याहीं रहो उगन्ता सूरज यां ही राहे जी
थाने रुती में होसी गणगौर म्हारा हंजामारू
यां ही रहोजी''।[12]

चैत्र शुक्ल तृतीया को गणगौर उत्सव का विशेष आयोजन होता है। इस दिन कन्यायें तथा विवाहित स्त्रियां ईसर जैसे भावी वर तथा अखंड सुहाग की कामना से विशेष पूजा करती हैं। आटे में हल्दी और पानी मिलाकर, गौर, ईसर तथा कान्हीराम के लिए सुन्दर आभूषण बनाए जाते हैं, जिन्हें पीसे चावल से बनाए मोती और नगीनों से सजाया जाता है। मीठे-नमकीन गुणो से भोग लगाया जाता है। जल भरे लोटे में बाग-बगीचों से लाए गए दूब और फूल-पत्तियों को चढ़ाती हैं।

पतवारी माता का पूजन भी इस अवसर पर किया जाता है। स्त्रियां हाथ में दूब, पुल तथा कुमकुम लेकर सोलह बार 'गवर-गवर गोमती ईसर पूजू पार्वती' गाते हुए अमर सुहाग की कामना करती हैं। गीतों में शिव-पार्वती की भक्ति के साथ अपने मधुर दाम्पत्य की भी कामना भी करती हैं। साथ ही अपने लिए वस्त्र, आभूषण और विविध श्रृंगार सामग्रियों की भी मांग करती है। इनमें कुंडल, कंठी, बाजूबन्द, हार, चूड़ा, पायल, बिछिया प्रमुख इस दिन उदयपुर में विवाहित महिलाएं व्रत रखती हैं और कथा कहती है।[13]

सायंकाल में ईसर और गौर का जुलुस निकाला जाता है। ईसर और गौर की मिट्टी की मूर्ति का जल में विसर्जन कर उत्सव का समापन होता है।

वर्तमान में गणगौर उत्सव का आयोजन चार दिवसीय मेवाड़ महोत्सव के रूप में होता है जो चैत्र शुक्ल से शुरू होकर षष्ठी तक चलती है। स्थानीय प्रशासन द्वारा विशेष व्यवस्था की जाती है। बड़ी संख्या में लोग पिछोला झील तथा विशेष रूप से गणगौर घाट पर एकत्र होते हैं। शहर के मारवाड़ी, गांछी, मारू, खटीक, धोबी, कहार, कुमावत, भोई सभी समाजों की काष्ठ निर्मित गौर तथा ईसर प्रतिमाएं लेकर स्त्रियां गणगौर घाट पहुंचती हैं। दोनों सोने-चांदी के आभूषणों तथा बहुमूल्य वस्त्रों से सुसज्जित होते हैं। इस दौरान स्त्रियां माथाने मैमंद लाजो, भंवर म्हाने खेलन दो गणगौर, म्हारी रखड़ी ऊपर मोर छे मेवाड़ी राणा आज गुलाबी गणगौर आदि गीत गाती रहती

Scanned with CamScanner

है। साथ में बालिकाएं सेवरा लेकर चलती हैं। गणगौर घाट पर इन प्रतिमाओं को धराया जाता है और महिलाएं फुल अथवा साड़ी के आंचल में जल भरकर गणगौर को कुसुम्मा कराती हैं, पिलाती हैं।[14]

गणगौर का पूजन कर स्त्रियां घूमर लेती हैं और गीत गाती हैं। पर्यटन विभाग द्वारा वर्तमान में आयोजित समारोह में प्रतिदिन विभिन्न पारम्परिक वाद्य यंत्रों के वादन तथा लोक नृत्यों की प्रस्तुति होती है, जिनमें पणिहारी, बंजारा, चकरी, घूमर, चरी नृत्य प्रमुख रूप से होते हैं। सांस्कृतिक कार्यक्रमों तथा झील के उस पार भव्य आतिशबाजी के पश्चात् गणगौर की सवारी पुनः प्रस्थान करती है। चार दिनों तक सवारी में गौर को कसूमल, हरा, गुलाबी और भोपाल शाही लहरियाँ आदि मुख्य रूप से श्रृंगार कराया जाता है।[15]

चौथे दिन गणगौर को भावभीनी विदाई दी जाती है। घरों में पूजी गई मिट्टी से निर्मित ईसर और गौर की प्रतिमाओं जल में विसर्जित कर स्त्रियाँ वर मांगती हैं-

ईसर को सो भाग देई।
गौरां को सो सुहाग देई।।

गणगौर विजर्सन का उपक्रम सूर्यास्त तक चलता रहता है। इस दौरान झील में पानी होने पर गणगौर की नाव की सवारी का भी आयोजन होता है। इस हेतु पिछोला झील में सुसज्जित ऐतिहासिक गणगौर की नाव पर गणगौर की प्रतिमाएं रखकर पूजा की जाती हैं व स्त्रियां व लोक कलाकार नृत्य करते हैं। नाव में गणमान्य लोग बैठते हैं। गणगौर की नाव के साथ कुछ अन्य नावें भी झील में चलती हैं, जो झील में थोड़ी दूर चक्कर लगाकर वापस आती हैं। यह दृश्य बड़ा मनोरम होता है। इसके बाद ही आतिशबाजी का प्रदर्शन होता है।[16]

रियासती दौर में तो मेवाड़ की गणगौर सवारी विदेशों में भी प्रसिद्ध थी। तीन दिनों तक चलने वाले गणगौर उत्सव का आयोजन महाराणाओं द्वारा किया जाता था, जिसकी प्रतीक्षा जन-सामान्य को पूरे वर्ष रहती थी। गणगौर की भव्य सवारी के आयोजन हेतु अपार जन सैलाब एकत्र होता था। ऐतिहासिक साहित्य के साथ-साथ लोक साहित्य, लोक गीतों तथा जनश्रुतियों से हमें रियासती काल के इस धार्मिक-सांस्कृतिक आयोजन के सम्बन्ध में पर्याप्त ज्ञान प्राप्त होता है।

गणगौर की सवारी का संचालन नक्कारों के माध्यम से किया जाता था। तीसरे पहर के वक्त होने वाले पहले नक्कारे से तैयार होकर यथास्थान पहुंचने का संकेत दिया

Scanned with CamScanner

जाता था। आम जनता अपने मकानों की छतों से तथा रास्ते के दोनों ओर खड़े रहकर सवारी का आनन्द ले सकती थी। फिर दूसरा नक्कारा बजाता, जिससे सवारी को यथाक्रम कर दिया जाता था। तीसरा नक्कारा महाराणा द्वारा हाथी अथवा घोड़े पर बैठकर प्रस्थान का सूचक होता था। उसी समय एकलिंगगढ़ से 19 अथवा 21 तोपें दागी जाती थी।[17]

बड़ी पाल से त्रिपोलिया घाट के दोनों तरफ लकड़ी के खम्भे गड़े होते थे, जिनमें लाल रस्सियां बंधी होती थीं। सवारी महलों से रवाना होती तब सबसे आगे निशान का हाथी होता था, उसके पीछे दूसरे हाथियों पर सरदार पासवान और अन्य खास लोग (मरजी के) चढ़े रहते थे। फिर पलटन व जंगी रिशाला मय अपने अफसरों के और अंग्रेजी बाजा बजाता हुआ निकलता था। जिसके पीछे ताम-झाम और खासा हाथी जिन पर सोने-चांदी के हौदे कसे हुए मिलते थे। फिर राजकीय बड़े-बड़े प्रतिष्ठित लोग उमराव, सरदार, चारण और अहलकार अच्छे घोड़ों पर चढ़े हुए आते थे। उनके पीछे खासा घोड़े झरी के सामान व सोने-चांदी के गहनों से सजे हुए और मुख्य घोड़ों के दोनों तरफ चंवर और मोरछल होते थे। युवराज की सवारी में चलने की दो जगह होती यानी खासा हाथी, घोड़ों के आगे अथवा महाराणा के पैदल जलवे (जुलूस) के आगे अपने राजसी पोशाक में अपने अश्व पर बैठे हुए सवारी का मध्यक्रम संभालते थे। युवराज के पीछे अर्दली के सिपाही व लवाजिमा के लोग होते। इनमें रणकंकण का बाजा जिसका मधुर सुरीला स्वर आकर्षण का केन्द्र होता था। जिसके साथ बांसुरी व तुरही वाले रहते थे। उनके पीछे श्री महाराणा अच्छी पोशाक अमरशाही और स्वरूपशाही पगड़ियों में से एक किस्म की पगड़ी जामा और डोडी होती।[18]

महाराणा के पीछे खासावाड़ा में दूसरे सरदार, जागीरदार, पेशवान चलते थे। इनके पीछे सांडनी सवार, रिसाले के घुड़सवार और सरदारों के सवार रहते थे। सवारी के दोनों तरफ छड़ीदारों की बुलन्द आवाज एवं चारणों एवं ढोलियों द्वारा वीर रस के दोहे एवं कवित्त सवारी की शोभा बढ़ाते थे। सबसे पीछे नगारे का हाथी रहता। इसके ऊपर दोनों ओर नगारे रहते जिन्हें नगारची बजाता रहता था। नगारची के पीछे शहनाई बजाने वाले बैठते थे।[19]

सवारी के इस प्रथम चरण के बाद नाव की सवारी का दूसरा चरण शुरू होता था। त्रिपोलिया घाट पर पहुंचकर महाराणा घोड़े अथवा हाथी से उतरकर नाव पर सवार होते थे जहां दो बड़ी नावों को आपस में मजबूती से जोड़ा जाता था। इसमें से एक नाव पर अनुमान दो फीट ऊँचा सिंहासन रहता था, जिस पर लकड़ी की चार खम्भों वाली

Scanned with CamScanner

छतरी होती थी। जिसे किमखाब, जरदोजी और झरी के वस्त्रों, मुकेश के तुर्रे और कलंगी आदि से सजाया जाता था। सिंहासन के चारों तरफ नीचे के तख्तों पर अच्छी पोशाकों में भूषित सरदार, चारण, अहलकार, पासवान अपने दर्जे के माफिक बैठते और कितने ही खड़े रहते थे।

दूसरे दर्जे के सरदारगढ़ उसी के समीप जुड़ी नाव में और अन्य किश्तियों पर सवार होते थे। फिर नौका की सवारी धीरे-धीरे बड़ी पाल तक जाती थी और फिर घूमकर त्रिपोलिया घाट पर आती।[20]

इसी बीच महलों से गणगौर की सवारी गणगौर घाट पहुंच जाती। यह महिलाओं का जुलूस होता था, जिसमें एक स्त्री गणगौर को अपने सिर पर उठाकर चलती थी। अन्य स्त्रियां गीत गाती हुई साथ चलती थीं। साथ में कुछ राज्य के पदाधिकारी रहते थे। महाराणा एवं समस्त समुदाय उठकर प्रणाम करते थे। गणगौर का विधिवत् पूजन करने के बाद आशिका महाराणा को धारण करवायी जाती थी। नृत्य एवं गायन होता था, गणगौर वापस महलों में पहुँचा दी जाती थी। इस वक्त तक संध्याकाल समाप्त होकर अंधकार छाने लगता था और तब उदयश्याम जी के मंदिर से रंगीन आतिशबाजी छोड़ी जाती थी। पिछोला के शुभ्र जल में रंग-बिरंगी रोशनी की परछाईयां, जन कोलाहल, गुब्बारे एवं झील के दोनों किनारों पर खड़ा जनसमूह इस दृश्य को देखकर आत्मविभोर हो जाता था। महाराणा महलों के नीचे बने रूप घाट पर उतरकर महलों में पधार जाते थे। महारानी सवारी में भाग नहीं लेती थीं, परंतु उनके लिए एक जाना पर्दे वाली नाव थी, जिसमें बैठकर वे इसका आनन्द ले सकती थीं।[21]

आम जनता इस गणगौर उत्सव में पूरे मन से भागीदारी करती थी, और जमकर आनन्द उठाती थी। कहा जाता है कि पुराने समय में गणगौर उत्सव के दिन परनालों में शराब का भी मुत वितरण किया जाता था, जिसे जनसाधारण द्वारा प्रसाद के रूप में ओक से ग्रहण किया जाता था।[22]

मेवाड़ के ठिकानों में भी उदयपुर के अनुकरण पर यह पर्व स्थानीय धूम-धाम के साथ मनाया जाता था। उदाहरणार्थ सारंगदेवोत ठिकानों के प्रथम श्रेणी कानोड़ की गणगौर भी दूर-दूर तक प्रसिद्ध थी। वहां अत्यन्त सजधज और धूम-धाम के साथ गणगौर का आयोजन होता था। सिंजारे (दातण हेला) के दिन स्त्रियां सुन्दर वस्त्र आभूषण पहन कर बाग-बगीचों में जाती और गणगौर के सामने गायन नर्तन करती थी। गणगौर के गीत गाए जाते थे -

Scanned with CamScanner

बाड़ी वाला बाड़ी खोल कूण री बेटी कूण री पोती
ईसर री पत्नी, ब्रहमानंद री पोती[23]

इस दिन ठिकाने की हवेली में नगारखाना होता था और स्त्रियां चौक में घूमर लेती थी। ढोली ढोल बजाता था। गणगौर में आठवें दिन ईसरजी गौरा को विदा कराने के लिए पधारते थे।[24] ईसर-गणगौर को चौक में विराजमान कर जमाई की तरह ईसरजी का लाड़ होता था। जमाई गीत और जीमण का आनन्द लिया जाता था। दूसरे दिन ठिकाने से गणगौर की सवारी निकाली जाती थी, जिसमें निशान का हाथी, हाथियों पर सवार सरदार, घोड़े पर सैनिक होते थे। पालकी के ऊपर विशेष प्रकार की खजूर की छतरी होती थी। नगाड़ा बजता था। पालकी में ईसर-गणगौर विराजमान होते थे।[25] ठिकाने की स्त्रियां महल से गणगौर को गाते हुए विदा करती थीं-

म्हारे सोला दिना रो आलम रो, ईसर ले चाल्यो गणगौर
म्हें तो पूरा रे रोटी खाती रे, ईसर ले चाल्यो गणगौर[26]

कुंवारी कन्यायें गीत गाती हुई गणगौर सवारी के साथ-साथ जाती थी। कालबेलिया जाति की स्त्रियां नृत्य करती थी। इस दिन पूरे जन समुदाय को विशेष रूप से तारफीणी नामक मिठाई बांटी जाती थी। गणगौर को तालाब पर ले जाया जाता था। पूजा अर्चना के बाद नव परिणीता कन्या के समान उसे विदाई दी जाती थी। गणगौर विजर्सन के समय गणगौर को बाबेल परिवार के यहां छोड़ दिया जाता था। कानोड़ ठिकाने के गणगौर उत्सव देखने हेतु गांवों के लोग दूर-दूर से आते थे।[27]

इसी प्रकार गोगुन्दा ठिकाने में भी गणगौर एक लोकप्रिय उत्सव था। महाराज कुंवर लालसिंह द्वारा कोटा से चुरा कर लायी गयी गणगौर से वहां मेले की शुरुआत हुई और गणगौर की सवारी प्रारम्भ हुई। आज भी यहां गणगौर पर्व सबसे बड़े पर्व के रूप में है जो वर्तमान में त्रिदिवसीय मेवाड़ महोत्सव के अंतर्गत रोमांचक, सांस्कृतिक कार्यक्रम के रूप में होता है। पूरे गांव में ढ़ोल नगाड़े बैण्ड-बाजे तथा ऊँट घोड़े के साथ गणगौर माता की सवारी गणगौर माता की मूर्ति को अपने सिर पर रखकर स्त्रियां उसके सम्मुख पारम्परिक गैर नृत्य करती हैं।[28]

समय के साथ-साथ गणगौर ने भी अपना रूप परिवर्तित कर लिया है और इससे जुड़ी अनेक परम्पराएं अब लोककथाओं और जनश्रुतियों का हिस्सा हैं। ऐसा ही एक है गणगौर के अपहरण तथा लूटकर ले जाना शौर्य और साहस का पूरा ध्यान रखा जाता था। भरी सुरक्षा में गणगौर को अपहरण कर अथवा लूटकर ले जाना और भी

Scanned with CamScanner

कठिन था, इसलिए इसे लूटकर ले जाना शौर्य और साहस के साथ जोड़ दिया गया। साथ ही जहां से इसे ले जाया जाता था, उस रियासत के लिए यह हर संभव और असम्मान का प्रतीक था। अतः सभी रियासतों, ठिकानों में गणगौर की सवारी कड़े पहरे में होती थी। तथापि समस्त सुरक्षा प्रबंधों के बाद भी गणगौर के अपहरण की घटनाएं, गणगौर के इतिहास में दर्ज हैं।[29]

ऐसी ही लोमहर्षक कथा गोगुन्दा की गणगौर के साथ जुड़ी है। कहा जाता है कि गोगुन्दा की गणगौर प्रतिमा को गोगुन्दा के महाराज कुंवर लालसिंह कोटा से अपने घोड़े पर चुरा कर लाए थे। कोटा की गणगौर सवारी की उस समय बड़ी प्रतिष्ठा थी। महाराणा भीमसिंह जी की इच्छा को जानकर महाराज कुंवर लालसिंह और उनके सहयोगी कलजी झाला ने वहां की गणगौर को लाने का बीड़ा उठाया। लालसिंह जी सवारी के दिन कोटा पहुंचे और कोटा के राजा से आज्ञा ली कि वे घोड़े पर गणगौर को बहुत अच्छी नचाते हैं। कोटा के राजा से आज्ञा प्राप्त होने पर नचाते हुए वहां से गणगौर को मेवाड़ ले आए और महाराणा भीमसिंह को प्रस्तुत किया। खुश होकर महाराणा ने कलजी को गोगुन्दा में जागीर (कलजी का गुड़ा) दी और लालसिंह जी की इच्छा पर गोगुन्दा में भी गणगौर की सवारी का प्रारम्भ किया।[30]

इसी प्रकार गणगौर की ढोल और गणगौर का टूंट्या परम्पराएं भी समय के साथ समाप्त हो गयी हैं। रात्रि को गणगौर का ढोल बजता था। ढोलण ढोल लेकर उस स्थान विशेष पर पहुंच जाती थी जहां ढोल के साथ निमंत्रित की हुई औरतें आती थीं और अपनी साड़ी का पल्ला देती हुई गाती-नाचती थीं। इस समय भी दांतड़ा गाया जाता था। ढोलन को धान और कपड़ा दिया जाता था। इसके दो-तीन दिन बाद ढोलन फिर पूरे गांव में घर-घर घूमती और ढोल बजाकर अक्याणा प्राप्त करती थी।[31]

गणगौर का टूंटया

दांतण हेला के दिन रात्रि को महिलाएं गणगौर का टूंट्या निकालती थी, जिसमें वर-वधू की शादी का दृश्य दिखाया जाता। इसमें वर प्रायः छोटा और वधू बड़ी होती। वर बनने वाली वर की पूरी पोशाक धारण करती थी और वधू बनने वाली वधू की। आगे-आगे ढोल की जगह फुटा कनस्तर बजाया जाता था।[32] परन्तु जो बात गणगौर पर्व शताब्दियों के साथ भी नहीं परिवर्तित हुई, उसमें सर्वप्रमुख है-अभिजन और साथ आमजन सभी का इस पर्व के साथ तादात्म्य और जुड़ाव। वर्ष भर इंतजार के बाद उसी उत्साह उमंग और आशा के साथ गणगौर की विदाई अर्थात् नवपरिणीता कन्या की

Scanned with CamScanner

विदाई पर्व की समाप्ति के साथ पीहर आई हुई नव-विवाहित बेटियों को भी उनके पतियों के साथ नव जीवन की मंगलकामनाओं के साथ विदा कर दिया जाता था।

मेवाड़ के आदिवासी समुदाय की भी इस पर्व के साथ अटूट सहभागिता सिरोही और माउन्ट आबू क्षेत्र के आदिवासी अपनी परम्परानुसार इसे मनाते हैं और जीवन साथी का चुनाव भी करते हैं, जिसे समाज की मान्यता प्राप्त होती है। 'मनखां रो मेलो' अर्थात् आदिवासियों के मेले के रूप में विख्यात गोगुन्दा का गणगौर मेला इसका सर्वश्रेष्ठ उदाहरण है, जिसमें भाग लेने का प्रयास प्रत्येक गरासिया करता है। दूर-दूर से पोटली में गुड़, अनाज आदि लेकर सजे-धजे गरासिया टोली में यहां पहुंचते हैं। रात्रि में कुंवारे युवक-युवती पारम्परिक नृत्य वालर करते हैं। जीवन साथी चुन लेने पर साथ में गणगौर माता के समक्ष नृत्य करते हैं और ईसर-ईसरानी के आशीर्वाद से अपने दाम्पत्य जीवन की शुरुआत करते है।[33]

गणगौर को सबसे विशिष्ट पर्व बनाते हैं, इसके गीत। इन गीतों में गौरी के सौन्दर्य का वर्णन है, तो नख शिव श्रृंगार का भी।

"हे गौरी किस शिल्पी ने तुम्हें गढ़ा है? तुमको बनाने वाला चतुर लोहार कौन है? गौरी का उत्तर है, मेरी माता ने मुझको जन्म दिया है और विधाता ने रूप।[34]

स्त्रियां पार्वती की आराधना के साथ-साथ अपने लिए भी श्रृंगार वस्तुओं और आभूषणों की मांग करती हैं। इनमें कानों के कुंडल, हाथों के बाजूबन्द, गले के हार, पैरों में पायल, बिछियां और माथे की रखड़ी शामिल हैं जैसे -

"लेओ-लेओ जी नणद बाई रा बीर
लोओ जी हजारी ढोला झूमकड़ो"

अपने सभी आभूषणों की बात बताते हुए वे पति से गणगौर पूजने जाने देने की बात कहती है -

खेलण दो गणगौर, भंवर म्हाने पूजण दो गणगौर
म्हाने रमण दो गणगौर

गौरी से सुख, सौभाग्य और सुहाग की याचना तो इन गीतों की आत्मा है। वर के गुणों के विषय में भी वे अत्यन्त स्पष्ट और व्यावहारिक हैं। कैसा वर चाहिए, वे स्पष्ट व्यक्त करती हैं -

"जो मेड़ी पर बैठा मद पीने वाला हो, घुड़सवारी में चतुर हो, टेढ़ी पगड़ी

Scanned with CamScanner

बांधता हो, धीमी मधुर चाल चलता हो, कमर मोड़कर घोड़े पर चढ़ता हो, हे माता गौरी मुझे वह वर देना। साथ ही कैसा वर नहीं चाहिए, वे यह भी खुलकर बताती है।

"जो चूल्हे का चांदना हो (चूल्हे पर बैठा रहता हो) जो हंडिया का अमीर हो (केवल खाना ही जानता हो) जो नौ थाल भरकर राबड़ी पी जाए और सोलह रोटियां खा जाए, हे माता गौरी, ऐसे वर को दूर ही रखना।"[15]

इस प्रकार सैंकड़ों वर्षों से अपने मूल भावों, आकांक्षाओं के साथ-साथ विभिन्न कालखण्डों में परिवर्तित होती हुई तत्कालीन समाजों के प्रतिबिम्ब के रूप में गणगौर की यह महनीय परम्परा मेवाड़ की पूज्य धरा और गौरवशाली सांस्कृतिक इतिहास के अमिट साक्ष्य के रूप में अपनी पहचान बनाए हुए है।

संदर्भ सूची

1. विक्रम सिंह राठौड़, राजस्थान का सांस्कृतिक इतिहास, राजस्थानी साहित्य संस्थान, जोधपुर
2. राजेन्द्र शंकर भट्ट, राजस्थान का सांस्कृतिक प्रवाह, पंचशील प्रकाशन, जयपुर, पृ. 85
3. चन्द्रमणि सिंह, राजस्थान की सांस्कृतिक परम्परा, पत्रिका प्रकाशन, जयपुर, पृ. 165
4. श्रीकृष्ण जुगनू, महाराणा प्रताप का युग, आर्यावर्त संस्कृति संस्थान, दिल्ली, 2016, पृ. 213, उद्धृत
5. गींडा राम वर्मा, राजस्थानी लोकोत्सव, भारतीय लोक कला मंडल, उदयपुर, पृ. 13
6. वही, पृ. 15
7. राजेन्द्र शंकर भट्ट, राजस्थान का सांस्कृतिक प्रवाह, पृ. 84-85
8. जोधपुर हकीकत बही नं. 6 (वि.स. 1851-52), पृ. 555
9. चन्द्रमणि सिंह, राजस्थान की सांस्कृतिक परम्परा, पत्रिका प्रकाशन, जयपुर, पृ. 165-166
10. उपरोक्त, पृ. 167
11. व्यक्तिगत साक्षात्कार, श्रीमती सुशीला देवी परिहार, आयु 78 वर्ष
12. गींडाराम वर्मा, राजस्थानी लोकोत्सव, पृ. 15
13. मनोहर सिंह राणावत, (सं. मेवाड़ का सामाजिक एवं सांस्कृतिक इतिहास) में आलेख-मेवाड़ में गणगौर परम्परा, डॉ. पुष्पा सुखवाल, पृ. 55
14. वही, पृ. 56
15. वही, पृ. 56
16. वही, पृ. 57
17. धर्मपाल शर्मा, मेवाड़ : संस्कृति एवं परम्परा, प्रताप शोध प्रतिष्ठान, उदयपुर, पृ. 187
18. मनोहर सिंह राणावत, (सं. मेवाड़ का सामाजिक एवं सांस्कृतिक इतिहास) में आलेख-मेवाड़ में गणगौर परम्पराए, डॉ. पुष्पा सुखवाल, पृ. 152

Scanned with CamScanner

19. धर्मपाल शर्मा, मेवाड़ : संस्कृति एवं परम्परा, प्रताप शोध प्रतिष्ठान, उदयपुर, पृ. 188
20. मनोहर सिंह राणावत, (सं. मेवाड़ का सामाजिक एवं सांस्कृतिक इतिहास) में आलेख-मेवाड़ में गणगौर परम्परा, डॉ. पुष्पा सुखवाल, पृ. 52-53
21. धर्मपाल शर्मा, मेवाड़ : संस्कृति एवं परम्परा, प्रताप शोध प्रतिष्ठान, उदयपुर, पृ. 189
22. व्यक्तिगत साक्षात्कार, श्रीमती सुशीला देवी परिहार, आयु 75 वर्ष
23. व्यक्तिगत साक्षात्कार, कानोड़ राजमाता इन्द्राकुंवर साहिबा जी, आयु 80 वर्ष
24. वही
25. महारावत उम्मेदसिंह जी हाथी गणेशगंज श्री गणगौरा की असवारी नामक कानोड़ ठिकाने का चित्र, कानोड़ रावत केसरी सिंह जी का जमीयत के साथ चित्र
26. व्यक्तिगत साक्षात्कार, कानोड़ राजमाता इन्द्राकुंवर साहिबा जी
27. हेमेन्द्र सिंह सारंगदेवोत, कानोड़ और बाठेड़ा ठिकाने का ऐतिहासिक अध्ययन (अप्रकाशित शोध प्रबन्ध) इतिहास विभाग, मोहनलाल सुखाड़िया विश्वविद्यालय, 2016
28. शंभूलाल दोषी व नरेन्द्र एन. व्यास, राजस्थान की अनुसूचित जनजातियां, हिमांशु पब्लिकेशन्स, उदयपुर, 1992, पृ. 109
29. डॉ. विक्रम सिंह राठौड़, राजस्थान का सांस्कृतिक इतिहास, राजस्थानी साहित्य संस्थान, जोधपुर, पृ. 14
30. अजय मोची, गरासिया जनजाति और गोगुन्दा गणगौर (अप्रकाशित आलेख)
31. व्यक्तिगत साक्षात्कार, कानोड़ राजमाता इन्द्राकुंवर साहिबा
32. वही
33. अजय मोची, गरासिया जनजाति और गोगुन्दा गणगौर (अप्रकाशित आलेख), पृ. 6
34. राजेन्द्र शंकर भट्ट, राजस्थान का सांस्कृतिक प्रवाह, पृ. 88
35. वही, पृ. 89

आचार्य एवं विभागाध्यक्ष, इतिहास विभाग
मोहनलाल सुखाड़िया विश्वविद्यालय, उदयपुर

Scanned with CamScanner